एक और टाडा नहीं

प्रस्तावित प्रिवेंशन ऑफ टैरोरिसम बिल की आलोचना

पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स

दिल्ली, जुलाई २०००

सरकार मौजूदा मॉनसून सत्र में, रद्द हो चुके टाडा कानून जैसा एक नया आतंकवाद विरोधी कानून लागू करने की कोशिश में जुटी है। आज इस प्रिवेंशन ऑफ टेरोरिसम बिल (प्र.आ.टे.) अर्थात आतंकवाद निरोधक अधिनियम के नाम से पुकारे जाने वाले नए कानून को आपराधिक न्याय प्रणाली में मौजूद बचाव के रास्तों को बंद करने के उद्देश्य से प्रस्तावित किया जा रहा है। रिमांड अवधि बढ़ा दी गई है। पुलिस के सामने गुनाह कबूलने को प्रमाण के रूप में दाखिल किया जा सकता है। जमानत के अधिकार को संकुचित कर दिया गया है। सजाऐं बढ़ा दी गई हैं। अभियोग प्रक्रिया अभियुक्त के विरूद्ध पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं। प्रमाण भार (अपराध सिद्ध करने के दायित्व को अभियुक्त पर डाल दिया गया है)। प्रतिकूल निष्कर्ष की शासन पद्दति की स्थापित की जा रही है। अपील का अधिकार सीमित कर दिया गया है। और अपराधों की परिभाषा इतनी व्यापक है कि किसी भी अपराध के लिए इस असाधारण कानून के तहत आरोप लग सकते हैं।

इस तरह से इस कानून का इस्तेमाल मनमाने ढ़ंग से किसी भी तरह के विरोध या असहमति के खिलाफ–यानि पर्चे बांटने से लेकर, कोई कविता लिखने या गाना गाने या किसी जगह, किसी समय पर उपस्थित होने तक के लिए किया जा सकता है। 'आतंकवादी गतिविधियों' से निपटने के लिए इस कानून में पुलिस और सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों को जो असाधारण अधिकार दिए गए हैं– वे किसी भी राजनीतिक विरोधी के खिलाफ आसानी से इस्तेमाल किए जा सकने वाले हथियार हैं। यह और भी आसान हो जाता है क्योंकि कानून के सभी सुरक्षात्मक उपायों, मौजूदा आपराधिक और न्यायिक प्रणाली के सभी अंकुशों और संतुलनों को खारिज कर दिया गया है और इन अपराधों की तहकीकात और मुकदमों के लिए अलग कार्यविधियाँ रखी गई हैं।

टाडा, जिसकी रूपरेखा इस बिल से मिलती–जुलती थी, के दस साल के अनुभवों के चलते, इस कानून के उपयोग और दुरुपयोग से संबंधित डर एकदम उचित हैं। ये अनुभव महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि टाडा आतंकवाद को खत्म करने में विफल रहा। इसे राजनीतिक विरोधियों के खिलाफ साम्प्रदायिक और मनमाने ढ़ंग से इस्तेमाल किया गया और इसने बड़े स्तर पर पुलिस की ज्यादतियों तथा संपूर्ण न्यायिक निष्ठुरता को बढ़ावा दिया।

पी.यू.डी.आर. तथा अन्य नागरिक अधिकार संगठनों ने समय समय पर टाडा के तहत बार–बार गिरफ्तार किए गए हजारों साधारण पुरूषों और महिलाओं की असीम मानवीय यंत्रणाओं को संकलित करने के प्रयास किए हैं। ये यंत्रणाएं 'कानून के दुरुपयोग की छिटपुट घटनाओं' के नतीजे नहीं थे, बल्कि इस कठोर कानून के ढांचे में ही निहित थे। देश भर के लोगों के व्यापक विरोधों और संघर्षों के फलस्वरूप टाडा अंततः १९९५ में खारिज कर दिया गया। परन्तु इस कानून के भूत से फिर भी मुक्ति नहीं मिली। और आज भी अनेकों लोग इस 'मृत' कानून के कारण जेलों में सड़ रहे हैं।

और अब हमें टाडा की तरह के एक और कानून का सामना करना है, जिसके प्रावधान और भी कड़े हैं। यह रिर्पोट इस प्रस्तावित कानून की आलोचना है। इसमें यह दर्शाने की कोशिश की गई है कि हमें इस विधेयक का विरोध क्यों करना चाहिए और क्यों इसे तुरन्त और पूर्ण रूप से वापिस लिए जाने की मांग करनी चाहिए।

हम यह रिर्पोट इसलिए प्रस्तुत कर रहे हैं कि शायद इससे कुछ बहस शुरू हो सके, शायद यह इस नए कानून के खिलाफ मत बनाने में और इसके बिना किसी शर्त वापिस लिए जाने की मांग के संघर्ष में कुछ योगदान दे सके। नहीं तो एक विकृत कानून, जिसमें लाखों लोगों को प्रभावित करने, सिविल सोसाइटी के सामाजिक तन्त्र को चिथड़े–चिथड़े कर देने, और संविधान की बुनियादी सोच को उलट देने की ताकत है, एक बार फिर हमारे बीच आ जाएगा।

क्योंकि जो अपना अतीत भूल जाते हैं उन्हें इसे फिर से जीने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है।

क्या हमें एक विशेष आतंकवाद विरोधी कानून की जरूरत है?

आतंकवाद से निपटने के लिए विशेष कानून लाने की विवशता की पैरवी करने के कारणों में एक प्रमुख कारण यह बताया जा रहा है कि देश में आतंकवाद और अधिक व्यापक और पेचीदा होता जा रहा है। ज्यादा खतरनाक बात यह है कि इसे चलाने में बाहरी एजेंसियों का हाथ बढ़ता जा रहा है। इस किस्म का मत पिछले साल दिसम्बर में इंडियन एअरलाइंस विमान के अपहरण की घटना से और अधिक पुख्ता हुआ है। हालाँकि राज्य सत्ता और कुछ राजनीतिक दल, खासकर भाजपा, तभी से आतंकवादियों से कड़ाई से निपटने के लिए एक कानून की मांग कर रहे हैं, जब से टाडा कानून की अवधि को आगे नहीं बढ़ाया गया था। इस माँग का आधार यह है कि साधारण कानून और सामान्य आपराधिक न्याय प्रणाली इन अपराधों से निपटने में विफल रही है। इस विफलता की जिम्मेदारी कानून लागू करने वाले तन्त्र की अक्षमता और भ्रष्ट आचरण की जगह 'सहज न्याय' और 'उदारवादी न्यायशास्त्र' के सिद्धान्तों पर आधारित कानून की कमजोरी पर डाली गई है। कानून के समक्ष बराबरी, निष्पक्ष अभियोग के अधिकार और बिना किसी उचित शक के गुनहगार साबित होने तक बेगुनाह माने जाने के अधिकार जैसे सिद्धान्तों को मौजूदा कानूनों की विफलता का कारण माना गया है। यानि आतंकवादियों से निपटने के लिए वही कानून सार्थक होगा जिनमें इन सिद्धान्तों को तिलांजली दी जाएगी और नागरिकों के ये अधिकार सम्मिलित नहीं होंगे।

यह तर्क दिया जा रहा है कि आतंकवाद को ऐसे कठोर कानून की ज़रूरत है, जिसमें बचाव के सब रास्ते बंद कर दिए जाएं, जिससे कि देश को आतंकवादियों के घेरे में आने से बचाया जा सके। आगे के पृष्ठों में हम विस्तार से यह बताएंगे कि हमें यह तर्क क्यों बेबुनियाद लगता है। संक्षिप्त में हमारे आधार निम्नलिखित हैं।

पहला, 'आतंकवादी गतिविधि' की परिभाषा केवल कुछ जन विरोधी अपराधों, जैसे भीड़–भाड़ वाली जगहों में बम विस्फोट या निर्दोष लोगों को मारना, आदि तक ही सीमित नहीं रखी गई है। यह परिभाषा इतनी अस्पष्ट है कि असल में इससे अलग–अलग तरह के अपराधों के बीच का फर्क ही खत्म हो जाता है और बहुत सी ऐसी गतिविधियाँ भी इसके दायरे में आ जाती हैं जो अपराध हैं ही नहीं। अतः इस तरह के कानूनों के प्रावधानों में इनका दुरुपयोग निहित होता है।

दूसरा, आतंकवादी किसे बुलाया जाएँ, यह तय करने का अधिकार पूरी तरह से केवल पुलिस व सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों को दिया गया है। इसके फलस्वरूप जो हमने पहले भी अक्सर देखा है – 'विरोध' 'आतंकवाद' बन जाता है और राजनीतिक विरोधी 'आतंकवादी'। भूमि सुधारों के लिए या डंकल ड्राफ्ट के खिलाफ विरोध कर रहे कामगार, वकील व कलाकार, नाटककार और बुद्धिजीवी सभी टाडा के तहत कभी न कभी आतंकवादी घोषित किए गए थे। यह प्रसतावित कानून जो पहले से भी अधिक कड़ा है, और भी बुरा साबित होगा। क्योंकि जेलों में बंद कर दिए गए निर्दोष लोगों को अपना मामला एक स्वतंत्र न्यायपालिक के समक्ष प्रस्तुत होने के लिए महीनों इंतजार करना पड़ेगा।

तीसरा, हमें याद रखना होगा कि जिसे 'आतंकवाद' का नाम दिया जाता है वह हमेशा आम लोगों के ऊपर की जा रही अविवेकपूर्ण हिंसा नहीं होती। अक्सर इसकी जड़ें सामाजिक–राजनैतिक होती हैं और यह विशिष्ट और अलग–अलग विचारधाराओं से संचालित होती है। इन बुनियादी समस्याओं को आतंकवाद विरोधी कानून से नहीं सुलझाया जा सकता है – क्योंकि ये राजनीतिक सवाल हैं, कानून और व्यवस्था की समस्याएं नहीं। और एक ऐसा असाधारण कानून जो आतंकवाद के संत्रास को इसकी राजनीतिक और सैद्धान्तिक जड़ों समेत उखाड़ फेंक सकने का दावा करे; वह आतंकवाद विरोधी कानून नहीं हो सकता। वह तो सीधे–सीधे एक जनविरोधी कानून है। आधिकारिक तर्क एक कदम और आगे जाते हैं इनके तर्क सभी तरह के 'आतंकवाद' को पाकिस्तानी खुफिया एजेंसिया 'आई.एस.आई.' से जोड़ कर देखते हैं और कानून व्यवस्था की हर समस्या को 'भारत की सुरक्षा' का नाम दे डालते हैं। उनके मुताबिक एसी स्थिति में साधारण कानूनों की जरूरत ही नहीं है क्योंकि यह तो 'युद्ध' की स्थिति है। दुर्भाग्य यह है, कि जैसा पुराने अनुभवों ने सिखाया है – यह एक युद्ध बन जाता है – राज्य द्वारा अपने ही लोगों के खिलाफ छेड़ा गया युद्ध।

चौथा, इस तरह का अप्रजातांत्रिक कानून ना तो तहकीकात को बेहतर बना सकता है, और ना ही पुलिस भ्रष्टाचार खत्म कर सकता है। और तो और यह उन लोगों को सजा भी नहीं दिला सकता है जिनको निशाना बनाने का यह दिखावा करता है। पुलिस अक्सर सजाओं की कम दर के लिए न्यायपालिका की निंदा करती पाई जाती है। लेकिन सच तो यह

विमान अपहरण और टाडा

२४ दिसम्बर, १९९९ को काठमांडू से दिल्ली लौटते हुए, इंडियन एअरलाइन्स के विमान आई.सी. ८१४ का अपहरण कर लिया गया था। अंततः ३१ दिसम्बर को आठ लंबे दिनों के बाद भारत सरकार इस विमान में से एक को छोड़कर बाकी १५४ यात्रियों को सुरक्षित छुड़ा पाई और इसके बदले में उसे तीन आतंकवादियों को छोड़ना पड़ा। अपहरण के दौरान ही आतंकवाद से निपटने के लिए और अधिक सख्त तरीके अपनाए जाने के लिए हंगामा शुरू हो गया।

मीडिया देश की घेराबंदी की छवि और राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरों से निपटने के तरीकों के बारे में मत व्यक्त करने लगे। पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आई.एस.आई. द्वारा देश में फैलाया जा रहा आतंकवाद बहसों का प्रमुख मुद्दा बन गया। यही वह संदर्भ था जिसके तहत आतंकवाद विरोधी कानून बनाए जाने की बात फिर से उठी। वरिष्ट सरकारी अधिकारियों के अनुसार "यह नया कानून मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद से निपटने के लिए बनाया जा रहा है और यह ऐसी आपराधिक गतिविधियों से होने वाली अपहरण जैसी घटनाओं से भी निपटने में सहायक होगा" (हिन्दुस्तान टाइम्स, १४ जनवरी को प्रकाशित बयान)। जिस बात को नज़रंदाज कर दिया गया वह यह कि अपहरण जैसे अपराधों के लिए कानून पहले से ही मौजूद हैं। भारत अपहरण के खिलाफ ३ अंतर्राष्ट्रीय संधियों में हस्ताक्षरकर्ता है - टोकिया (१९६३), हेग (१९७०) और मॉन्ट्रीयाल (१९९१), जो कि नागरिक उड्डयन सुरक्षा के खिलाफ गैरकानूनी गतिविधियां निरोधक कानून, १९८२ के माध्यम से देश में लागू हैं। इस कानून के तहत अपहरणकर्ताओं को आजीवन कारावास की सजा हो सकती है।

परन्तु आतंकवाद पर काबू पाने के लिए कड़े कानूनों की जरूरत को लेकर हो रही इन उग्र बहसों में जो बात छूटती जा रही है वह यह कि इस अपहरण के बाद छोड़े गए तीनों आतंकवादियों को एक खासतौर पर सख्त कानून टाडा के तहत गिरफ्तार किया गया था। परंतु उनके मामलों का आखिर हश्र क्या हुआ?

हरकत-उल-अंसार के नेता मौलाना मसूद अजहर को सबसे पहले फरवरी १९९४ में गिरफ्तार किया गया था। उसके खिलाफ छः साल बाद भी कोर्ट में चालान दाखिल नहीं किया गया है। टाडा के तहत दर्ज मामला प्रमाणों के अभाव में बर्खास्त करना पड़ा। जिस मामले में उस पर असल में मुकदमा चल रहा है वह जेल तोड़ने की कोशिश का है (द हिन्दु, ३ जनवरी)। अल-उमार-मुजाहिदीन के नेता मुश्ताक अहमद जरगर पर १९९२ से टाडा के तहत मुकदमा चल रहा है। इस मामले में भी अभी तक चालान दाखिल नहीं हुआ है। तीसरे 'आतंकवादी' अहमद उमर सैयद शेख को टाडा के प्रावधानों के तहत १९९४ में गिरफ्तार किया गया था। पांच साल बाद भी आरोप तय नहीं किए गए हैं।

इस तरह इन तीनों आतंकवादियों में से एक को टाडा के आरोप से बरी कर दिया गया। अन्य दो के ऊपर पांच साल बाद भी आरोप तक तय नहीं हो सके। यह हाल है टाडा जैसे "कड़े" कानून का। असल में टाडा में दर्ज अनेकों मामलों की यही कहानी है। एक असाधारण कानून तहकीकात में असाधारण ढिलाई को जन्म देता है।

आई.सी. ८१४ विमान के यात्रियों की सुरक्षित वापसी के लिए तीन टाडा अभियुक्तों के छोड़े जाने से एक अत्यंत विडम्बनात्मक घटना हुई। १९९२-९३ के मुंबई के बम विस्फोटों के ३० अभियुक्तों ने प्रधानमंत्री के समक्ष एक याचिका दायर की। याचिका में कहा गया कि टाडा के मामलों में फैसले होने में देरी के कारण ही अपहरणकर्ता अपनी मांग मनवा पाने में सफल हो पाए! उन्होंने कहा कि टाडा की धारा १७ के बावजूद, जिसमें टाडा मामलों को अन्य मामलों की तुलना में वरीयता दी जाती है, टाडा में मामले सालों साल लटकते रहते हैं। इसलिए यह देखते हुए कि इन टाडा बंदियों को अभी सालों साल लम्बे मुकदमे का सामना करना है, और जो पहले ही पांच से ज्यादा सालों से जेल में बंद है, याचिका इन बंदियों को जमानत पर छोड़ दिए जाने की मांग करती है।

है कि न्यायधीशों को कभी तहकीकात में देरी के लिए तो कभी गुनहगार के साथ मिलीभगत और प्रमाण नष्ट करने के लिए पुलिस की कड़ी आलोचना करनी पड़ती है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण प्रियदर्शनी मट्टू मामला है। इस तरह की पुलिस के साथ प्रि.आ.टे. वह सब बिल्कुल ही नहीं कर सकता जो कर पाने का वह दावा करता है। बल्कि उलटे यह अमानवीय निरोधक नज़रबंदी (प्रिवेंटिव डिटेंशन) का कानून बन जाएगा। टाडा के संचालन से संबंधित कई एक ध्यान आकर्षित करने वाले तथ्यों में से एक है इसके तहत हुई दोष सिद्धि का हद से ज्यादा खराब रिकार्ड। १९८५ से जुलाई १९९४ तक टाडा

के तहत गिरफ्तार हुए लोगों में से केवल एक प्रतिशत को ही सज़ा हुई थी। इसका कारण यह था कि पुलिस अपनी तहकीकात पूरी नहीं कर सकी और बहुत से मामले तो अभियोग की अवस्था तक भी नहीं पहुँच पाए। टाडा के हटाए जाने के ६ सालों बाद भी टाडा के ४६५८ मामले अभी भी लटके हुए हैं। इनमें से १३८४ मामलों में तो अभी तहकीकात ही चल रही है (२ जनवरी २००० को द हिन्दु में छपा गृहमंत्री का बयान)। आज तक भी करीब १३,३४५ (इंडियन एक्सप्रेस, ३० दिसम्बर १९९९) से १४,४४६ केस हैं जिनमें अभियोजन लंबित है।

सरकार की 'आतंकवादी गतिविधि' की परिभाषा में आने के बावजूद, कई बड़े मामलों में सजाऐं टाडा के तहत ना हो कर, साधारण कानूनों के तहत हुई। मिसाल के तौर पर, सुखदेव सिंह (सुक्खा) और हरजिंदर सिंह (जिंदा) का मामला, जिन्हें जनरल वैद्य की हत्या के लिए फांसी की सजा सुनाई गई थी और हाल ही में राजीव गांधी की हत्या का मामला, जिसमें चार अभियुक्तों को फांसी की सजा सुनाई गई है।

कई आतंकवादी गतिविधियों में हुई अविवेकपूर्ण हिंसा, स्वाभाविक तौर पर प्रतिक्रिया और क्रोध को जन्म देती है। इससे इस सोच को बढ़ावा मिलता है कि अपराध इतनी बुजदिली का काम है कि अभियुक्त को उदारता से सुरक्षात्मक उपाय उपलब्ध करवाना गलत है। परंतु असलियत में कानून में यह सुरक्षात्मक उपाय उन्हीं के लिए बने हैं जिन पर कानून तोड़ने के कारण केस चलते हैं। और इन्हीं सुरक्षात्मक उपायों से कानून का राज स्थापित होता है, ना कि इनके बिना।

कानून किस तरह पारित किया जा रहा है?

१९९५ और आज के बीच

टाडा के खिलाफ कड़ी नागरिक असहमति के कारण, लागू किए जाने के एक दशक के बाद नरसिंहराव सरकार को इसे वापिस लेना पड़ा था। २३ मई १९९५ को टाडा के वापिस लिए जाने से पहले ही सरकार ने १८ मई १९९५ को क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट (सी.एल.ए.) विधेयक राज्य सभा में पेश कर दिया, जिससे आतंकवाद के खिलाफ कानून को अधिक स्थाई रूप दिया जा सके। इस बार इस विधेयक पर राज्य सभा में दो दिनों में लगभग साढ़े आठ घंटे बहस हुई। आज तक टाडा कानून पर इतनी लंबी बहस नही हुई थी। इसका श्रेय इस तरह के कठोर व काले कानूनों के खिलाफ बढ़ते जनविरोध को जाता है। आम सहमति की गैर मौजूदगी में सरकार ने इस पर वोटिंग नहीं करवाई। उस समय भाजपा एकमात्र दल था जो कड़े आतंकवाद विरोधी कानून के लिए जोरदार पैरवी कर रहा था।

पी. यू. डी. आर. ने उस समय भी इस प्रस्तावित कानून को लेकर अपनी शंकाएं व्यक्त की थी जो कि टाडा का ही एक प्रतिरूप था। उस समय से सौभाग्य से यह विधेयक ठंडे बस्ते में पड़ा रहा। परन्तु अलग–अलग राज्य सरकारें, जैसे तमिलनाडु व आंध्रप्रदेश, इसी तरह के क्रूर कानून लाने की कोशिशें करती रहीं। महाराष्ट्र १९९९ में इसी तरह का एक कानून लागू करने में सफल भी हो गया– जिसका नाम है महाराष्ट्र कन्ट्रोल ऑफ ऑरगेनाइज्ड क्राइम एक्ट।

अब पांच साल बाद मौजूदा वाजपेयी सरकार ने फिर से सी.एल.ए. बिल को पुर्नजीवित किया है और वह इसे आने वाले सत्र में नए नाम से पारित करने की कोशिश में है।

भाजपा के नेतृत्व वाले शासन की भूमिका

अपने कार्यकाल में टाडा हर बड़े सत्तारूढ़ संसदीय दल के लिए एक उपयोगी हथियार के रूप में पेश आया। इस तरह निरंतर जनविरोध को कुचलने और राजनैतिक विरोधियों से निपटने के लिए टाडा को प्रयोग में लाया गया। इस लिहाज से भाजपा का रिकार्ड अन्य दलों से न तो बेहतर है न बदतर।

परन्तु आज इस विधेयक को जिस तरह लाया जा रहा है और जिस तरह के बदलावों का प्रस्ताव गृह मंत्रालय रख रहा है, तथा जिस तरह का गुप्त एजेंडा यह सरकार चला रही है उससे इस कानून को लेकर शंकाएं और भी बढ़ जाती हैं।

टाडा के दुरुपयोग के अनेकों गंभीर प्रमाणों और इसके पक्षपातपूर्ण इस्तेमाल के खिलाफ अनेकों विरोधों के चलते १९९५ में सी.एल.ए. विधेयक में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव लाए गए थे। ये बदलाव थे . . . .

- पुलिस के सामने गुनाह कबूलने को प्रमाण के रूप में मान्यता देने वाली घातक धारा को हटाना।
- उच्च न्यायालय में अपील की इजाजत देना।
- जमानत के अधिकार को सीमित करने वाली धारा को हटाना।

इन बदलावों द्वारा टाडा के कुछ सबसे विवादास्पद पहलुओं को हटाने की कोशिश थी। परन्तु मौजूदा सरकार ने २ फरवरी १९९९ को गृह मंत्रालय के एक अधिकारिक आदेश के जरिये एक झटके में इन बदलावों को खारिज कर दिया और टाडा के मूल क्रूर और घातक प्रावधानों को वापिस रख दिया।

कड़े कानून के कड़वे सच

३० जून १९९४ तक टाडा के तहत गिरफ्तार लोगों की संख्या ७६,००० पर पहुँच गई थी। इनमें से २५ प्रतिशत मामले पुलिस ने खुद ही खत्म कर दिए क्योंकि वो इनमें आरोप दाखिल नहीं कर पाई। जिन मामलों में मुकदमे चले उनमें से केवल ३५ प्रतिशत में फैसला हुआ। इनमें से ९५ प्रतिशत मुकदमों में अभियुक्त बरी हो गए। *इस तरह अंततः गिरफ्तार हुए कुल लोगों में से केवल १ प्रतिशत को सजा हुई।*
(स्रोत : गृहमंत्रालय)

टाडा के वापिस लिए जाने के दो साल बाद १९९७ में, टाडा के अंतर्गत तब तक बंद लोगों की संख्या ४,५२८ थी। इनमें से ६ प्रतिशत मामलों में आरोप वापिस ले लिए गए थे। साल के अंत तक सिर्फ ५ प्रतिशत मामलों में चालान दाखिल हुए थे और ९० प्रतिशत मामलों में अभी तहकीकात ही पूरी नहीं हुई थी। इस साल में टाडा अभियुक्तों की संख्या ६,७०९ थी। केवल ६ प्रतिशत मामलों में मुकदमों में फैसले हुए थे। इनमें से ६५ प्रतिशत मामलों में अभियुक्त बरी हो गए थे। *यानि जिन पर मुकदमे चले उनमें से केवल २.५ प्रतिशत को सजा हुई थी।*

जम्मू और कश्मीर में टाडा के तहत २०,००० मामले दर्ज हुए। किसी को भी सजा नहीं हुई। ११,००० मामले शुरूआती तहकीकात के बाद खारिज हो गए। २,००० सी.आर.पी.सी. की धारा १६६ के तहत सबूतों के अभाव में खारिज हो गए। १,४०० लोगों को पैरोल पर छोड़ा गया और १,५०० की जमानत हो गई। १,५०४ आतंकवादियों पर चल रहे ७७८ मामले अभी लंबित हैं।

गौरतलब बात यह है कि इसी अधिकारिक संशोधन में, आतंकवादी गतिविधि की परिभाषा में से उस वाक्यांश को निकाले जाने की सिफारिश भी की गई है जो "किसी समुदाय के लोगों को प्रथक कर दे या विभिन्न समुदायों के लोगों के बीच आपसी मेलजोल पर बुरा असर डालने" से संबंधित था। यह अनुभूति, कि टाडा का इस्तेमाल, चुनींदा रूप से अल्पसंख्यक वर्ग को निशाना बनाने के लिए किया गया था – उन कई कारणों में से एक था जिनके चलते १९९५ में सरकार ने टाडा की अवधि नहीं बढ़ाई थी। आज जब मौजूदा सरकार धार्मिक कट्टरपंथी आतंकवाद को और उसे भी केवल इस्लामिक कट्टरपंथी आतंकवाद बताकर, संदर्भ के रूप में प्रस्तुत कर रही है, इस संशोधन के खतरनाक पहलू हैं।

इस विधेयक को भी कपट भरे बयानों और झूठे तथ्यों के एक घातक घोल के बीचोंबीच पेश किया जा रहा है, यह रवैया भाजपा की पहचान है। उदाहरण के लिए ७ जनवरी की एक बैठक में गृह मंत्री लाल कृष्ण आडवानी ने टाडा के वापिस लाए जाने की संभावना से स्पष्ट इनकार किया। उन्होंने कहा कि "आपराधिक कानून समवर्ती विषय है और अगर राज्यों को जरूरी लगता है तो वे टाडा जैसे कानून बना सकते हैं। तमिलनाडू ने बना लिया है; दूसरे भी कर सकते हैं (जनवरी को द हिन्दुस्तान टाइम्स, द हिन्दु व अन्य अखबारों में प्रकाशित बयान)। और यह बयान तब दिया गया जब सरकार बजट सत्र में नए टाडा को पारित करने की तैयारी में थी।

लॉ कमीशन की भूमिका

संशोधित विधेयक को, जिसमें टाडा के घातक प्रावधान बरकरार थे, लॉ कमीशन के पास सुझावों व सिफारिशों के लिए भेजा गया।

कमीशन से कहा गया था वह अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समस्या से जूझ रहे अन्य देशों के, आतंकवाद विरोधी कानूनों को ध्यान में रखकर भारत में ऐसे कानून की जरूरत पर समग्र दृष्टिकोण विकसित करे।" कमीशन पर ऐसी कोई बाध्यता नहीं दिखती की वह अपनी राय बनाने के लिए टाडा के अनुभवों–'आतंकवादियों' को सजा दिलवाकर, आतंकवाद से निपटने में इसकी विफलता या फिर अत्यंत बड़े स्तर पर इसके दुरुपयोग और इससे होने वाली त्रासदी,– को ध्यान में रखे।

इसलिए लॉ कमीशन के समग्र दृष्टिकोण में, जो कि इसकी पृष्ठभूमि में दिया गया है, कुछेक फैसलों जैसे करतार सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब के जिक्र के अलावा, टाडा के दस साल के अनुभवों की कोई समीक्षा नहीं है।

लॉ कमीशन ने अंततः कुछ बदलाव करके और कुछ नई चीजें जोड़ कर प्रस्तावित विधेयक को अनुमोदित कर दिया।

इतने अधिक महत्व के विधेयक को जिस तरीके से लाया जा रहा है, उससे मुद्दे पर किसी भी तरह की सार्वजनिक बहस की संभावना को ही खत्म किया जा रहा है। लॉ कमीशन की भूमिका खास तौर पर अत्यंत संदेहजनक है, क्योंकि विधेयक के बारे में निष्कर्ष निकाल चुकने के बाद और अपनी सिफारिशें देने के बाद उसने बिल पर विचार विमर्श के लिए दो बैठकें बुलाने का नाटक किया। पहली बैठक २० दिसम्बर को हुई व दूसरी २६ जनवरी को। विधेयक को लागू करने के लिए सिफारिशें पहले ही भेजी जा चुकी थीं। अतः इन बैठकों का मकसद बिल पर दिखावे के लिए कुछ मत इकट्ठे कर लेने के अलावा कुछ नहीं था। हाँ, इस तरह की प्रक्रिया से इस क्रूर और अंधे कानून के लिए 'बृहत स्वीकृति' का ढोंग जरूर रचा जा सकता है।

इस तरह की प्रक्रिया से यह सच्चाई छिप जाएगी, कि कैसे यह कानून जिसके एक वार से स्वाभाविक न्याय के सारे सिद्धान्त उलट लाएंगे, जिससे जनतांत्रिक अधिकार की गारंटी देने वाले संविधान का ढ़ांचा, चरमरा जाएगा बिना किसी सार्वजनिक बहस के लागू हो गया। लॉ कमीशन जैसी महत्वपूर्ण संस्था की सिफारिशों के साथ 'विशेषज्ञों' की स्वीकृति का ढिंढोरा भी पीटा जाएगा। जिन विशेषज्ञों ने अपनी राय दी उनमें वरिष्ठ वकील, कार्यरत और सेवानिवृत नौकरशाह और पुलिस अधिकारी शामिल हैं। लॉ कमीशन की दूसरी रपट में उन लोगों के मतों को दर्ज़ किया गया जिन्होंने प्रस्तावित बिल का विरोध किया है। परन्तु इस दमनकारी कानून के विरोध के पीछे छुपी चिन्ताओं पर ध्यान देने की कोई ज़रूरत नहीं समझी गई है। सब तरफ से इस असाधारण आतंकवाद विरोधी कानून को देखते हुए लॉ कमीशन ने कुछ छोटे मोटे बदलाव कर दिए और साथ ही बिल को नया नाम दे दिया! उच्च न्यायालय में अपील का अधिकार दे दिया गया, आतंकवादी गतिविधियों की परिभाषा को थोड़ा सीमित कर दिया गया और पुराने ड्राफ्ट के बेगुनाह साबित न होने तक गुनहगार माने जाने के प्रावधान को कुछ विशेष मामलों में 'प्रतिकूल निष्कर्ष' निकाले जाने में बदल दिया गया। टाडा का विरोध होने पर उसे एक नया नाम – क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट बिल – देकर प्रस्तुत किया गया था। जब इस प्रस्ताव की सब तरफ से निंदा हुई तो उससे निपटने के लिए फिर से नाम बदलने की युक्ति इस्तेमाल

बारह साल किस लिए?

पटेल नगर की पुलिस ने करम सिंह, हारनिक सिंह, संतोख सिंह, मेजर सिंह, उजागर सिंह, कुलवंत सिंह, सुरिन्दर सिंह, अमरजीत सिंह और जे.एस. ढ़िल्लों को १९८७ में पकड़ा। उन पर टाडा की धाराएं ३, ४ लगाई गईं। ऐसा कहा गया कि सितम्बर १९८७ में इनमें से तीन- बलदेव, उजागर व धरम सिंह ने डी.सी.पी. के सामने गुनाह कबूल किये थे। डी.सी.पी. ने ये बयान रिकार्ड किए थे और इन्हीं के आधार पर मुकदमा शुरू हुआ था।

बारह साल से ज्यादा बीत जाने के बाद, ९ जनवरी १९९९ को एडीशनल सेशन्स जज आर.सी. यदुवंशी ने, जिनके पास यह केस था, ९ जनवरी को यह फैसला दिया कि इनके गुनाह कबूलने के बयान, 'अविश्वसनीय' हैं। उन्होंने कहा कि "डी. सी.पी. को यह नहीं पता कि बयान कहाँ रिकार्ड किए गए, किसने रिकार्ड किए, और यह दिखाने के लिए कोई रिकार्ड नहीं है कि अभियुक्तों को पर्याप्त समय दिया गया था या नहीं।" छोटे में, कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे यह शक खत्म हो सके कि अभियुक्तों ने बयान बिना जोर जबर्दस्ती के लिए गए थे। संबंधित डी.सी.पी. आमोद कंठ आज दक्षिण क्षेत्र के अतिरिक्त पुलिस कमिशनर हैं। उनका कहना है कि बयान उनके लिए किसी और ने दर्ज किए थे। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि बयान में लिखाई देखकर भी बयान लेने वाले का नाम वे नहीं बता सके। इतना ही नहीं वे यह भी नहीं बता सके कि अभियुक्तों को उनके सामने किसने पेश किया था और उन्हें किसने पहचाना था। और न्यायालय के इस नाटक की कमी पूरी करने के लिए, दत्ताराम नामक एक इंस्पेक्टर ने खुद सामने आकर कह दिया कि गुनाह कबूले जाने के वे बयान डी.सी.पी. के आदेश पर उसने दर्ज किए थे।

इस तरह १२ साल जेल में काटने के बाद १२ में से १० तथाकथित 'आतंकवादी' बरी कर दिए गए। और उनकी यंत्राणा के हरजाने के नाम पर उन्हें देने के लिए प्रमुख जांच अधिकारी, इंस्पेक्टर जय सिंह को फटकाराने के अलावा, कोर्ट के पास और कुछ नहीं था।

प्रिवेंशन ऑफ टेरोरिज़म बिल - एक झलक

धारा	प्रावधान	परिणाम
१ (३)	कानून एक साथ पांच साल के लिए लागू होगा	संसदीय पुनर्विचार के बिना अत्यन्त लंबी अवधि
१ (३)	इस कानून के रद्द होने पर भी इसके तहत दर्ज़ मुकदमे चलते रहेंगे	रद्द होने से भी इसके तहत बंदियों को राहत नहीं मिलेगी
३ (१)	आतंकवादी गतिविधि की परिभाषा	इसमें साधारण कानून में मौजूद अनेकों अपराध शामिल
३ (३)	किसी आतंकवादी गतिविधि की तैयारी में साजिश करना, या करने की कोशिश करना, उसे समर्थन देना, मदद करना, उकसाना या जानबूझकर उसके लिए सुविधा प्रदान करना अपराध है	बहुत बड़े दायरे के कारण दुरुपयोग की बड़ी सम्भावना
३ (४)	अपराधी को पनाह देना, छिपाना या इसकी कोशिश करने की सज़ा	दोस्तों, घरवालों, रिश्तेदारों को प्रताड़ित किया जाना और उनके खिलाफ झूठे मुकदमे
३ (५)	आतंकवादी गैंग या संगठन की सदस्यता अपराध है	सदस्यता स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं
३ (६)	आतंकवादी गतिविधि से हासिल संपत्ति रखने की सज़ा	इससे प्रताड़ने को वैधता मिलेगी
३ (८)	आतंकवादी गतिविधि की सूचना देने में असफल होने की सज़ा	कुछ न करना या चूकना भी अपराध है
४	अधिसूचित क्षेत्रों में हथियार समेत जाना अपराध	टाडा के ऐसे प्रावधान का बहुत दुरुपयोग हुआ था
५	मौजूदा कानूनों में दर्ज़ अपराधों के लिए ज्यादा सज़ा	कानून के समक्ष बराबरी के अधिकार का हनन
६, ७	पुलिस को संपत्ति जब्त करने का अधिकार	यह न्यायपालिका का अधिकार है, पुलिस को सौंपने से भ्रष्टाचार बढ़ेगा
७	जब्त संपत्ति को कार्यपालिका या कोर्ट अनुमोदित कर सकते हैं	कार्यपालिका को न्यायिक अधिकार देना
८	व्यक्ति पर बिना केस बनाए उसकी संपत्ति की जब्ती	बिना आरोप के सज़ा
१३	सिविल न्यायालय के अधिकार कार्यपालिका के डेज़िगनेटिड अथार्टी को	कार्यपालिका को न्यायपालिका के अधिकार सौंपना

धारा	प्रावधान	परिणाम
२२	लिखाई, उगंलियों के निशान, पैरों के निशान, खून, बालों आदि के नमूने न देने से अपराधी माना जाना	अपने खिलाफ गवाह न होने के अधिकार का हनन
२४ (२)	समरी ट्रायल (बिना औपचारिक आरोप और बिना गवाही दर्ज़ किए मुकद्दमा)	२ साल की सजा जबकि आम तौर पर समरी ट्रायल से ३ महीने तक की सजा हो सकती है
२४ (५)	अभियुक्त और उसके वकील की अनुपस्थिति में मुकदमा चलाना	प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन
२५	गवाहों की पहचान और पता जिरह के समय तक भी जाहिर न करना	गवाह की प्रमाणिकता की जांच का कोई तरीका नहीं
२७	पुलिस के सामने गुनाह कबूलना प्रमाण के रूप में मान्य	पुलिस हिरासत में यातना को बढ़ावा
३० (२ ए)	६ महीने तक बिना आरोप जेल में रखा जाएगा	निरोधक नज़रबंदी के रूप में दुरुपयोग होगा
३० (२ ए)	३० दिन की पुलिस हिरासत और अभियुक्त को ६ महीने के भीतर न्यायिक हिरासत से फिर पुलिस हिरासत में लाया जा सकता है	मौजूदा कानून में केवल पहले १५ दिन में पुलिस हिरासत में भेजा जा सकता है – यातना को बढ़ावा देगा
३० (६ ए)	जमानत तभी अगर न्यायालय बेकसूर मानता हो	अनुचित रूप से कठोर – वास्तव में जमानत से इंकार
२६	अपील केवल सर्वोच्च न्यायलय में वह भी ३० दिन के अंदर	अपील के अधिकार पर रोक और उच्च न्यायालय के संवैधानिक अधिकार क्षेत्र का हनन
३४	कुछ मामलों में पहले से कसूरवार मानना	सिद्ध करने के दायित्व का उलटना; प्राकृतिक न्याय के खिलाफ
४१ (सी, डी)	कार्यपालिका को अपराध परिभाषित करने, सजा देने व संपत्ति जब्त करने का अधिकार	कार्यपालिका को अत्यधिक अधिकार देना
३६	पुनर्विचार समितियों का गठन	छानबीन स्वतंत्र नहीं, बल्कि कार्यपालिका के हाथ में ही रहेगी

की जा रही है। अब यह नया नाम प्रिवेंशन ऑफ टेरोरिज़म बिल है।

आतंकवाद की समस्या को खत्म करने के तथाकथित उद्देश्य में टाडा के पूरी तरह विफल हो जाने के बारे में सभी जानते हैं और इस पर कोई दो राय नहीं हैं– परंतु इस कड़वे सच के बावजूद आज के अधिकारियों के बयानों में नए बिल को लेकर किसी तरह की शंका का कोई अंश दिखाई नहीं देता। (देखिए "उन्होंने संसद में क्या कहा")

गृह मंत्री लाल कृष्ण आडवानी ने सिर्फ इतना स्वीकारा है कि "कुछ प्रशासनिक अधिकारियों में ही टाडा के प्रावधानों को दुरुपयोग करने की प्रवृति थी"। और भी तब जब उदास भाव से उन्हें यह कबूलना पड़ा की इस एकमात्र "केन्द्रीय आतंकवाद विरोधी कानून की अवधि इसलिए समाप्त करनी पड़ी क्योंकि नागरिकों को ऐसा आभास होने लगा था कि यह कानून अल्पसंख्यक विरोधी है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने प्रस्तावित बिल की आलोचना करते हुए साफ कहा है कि एक तो इसकी ज़रूरत नहीं है और दूसरा इसका दुरुपयोग संभव है। इसके बावजूद सरकार मौजूदा कानूनों को अधिक कड़ाई से लागू करने की ज़रूरत की जगह इस नए कानून की ज़रूरत पर ज़ोर डाल रही है। सरकार इस क्रूर व दमनकारी बिल के बारे में व्यक्त किए गए डर को इस आधार पर नज़रअंदाज़ कर रही है कि 'राष्ट्रीय हित' को 'व्यक्तिगत हितों' से ज्यादा प्राथमिकता मिलनी चाहिए। इसी तरह के नृशंस काले कानून पहले जितने आसानी से पारित होते रहे हैं उसके चलते यह डर बिलकुल जायज़ है कि संसद के आने वाले मानसून सत्र में इस बिल को भी, इसके गम्भीर प्रावधानों पर बिना किसी गम्भीर बहस के, पारित कर दिया जाएगा। टाडा के रद्द होने के पांच साल बाद इस समय पर इस विधेयक को लाया जाना भी गौरतलब है। संविधान समीक्षा ओर आर्थिक नीतियों के प्रश्नों पर बहसें निर्धारित हैं जिनका इस विधेयक की चर्चा पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। पहले भी हर बार जब टाडा की अवधि बढ़ाई गई उसे किसी ऐसे अन्य विधेयक के साथ पेश किया गया था, जिससे चर्चा टाडा पर न हो। प्रि.आ.टे. विधेयक के पारित होने में चर्चा की यही दुर्गति सुनिश्चित है।

इसके जरिये संविधान के बुनियादी तत्व कचरे में फेंके जाऐंगे। और वह भी संविधान समीक्षा के बिना ही।

प्रि.आ.टे. विधेयक में क्या प्रस्ताव हैं?

लॉ कमीशन के सुझावों के बाद प्रस्तावित प्रि.आ.टे. विधेयक चार हिस्सों में बंटा हुआ है और उसमें कुल इक्तालीस धाराऐं हैं। कुछ और जनविरोधी बदलावों और कुछ दिखावटी सुरक्षा उपायों के अलावा यह विधेयक टाडा का ही एक प्रतिरूप है। टाडा को किसी क्षेत्र में लागू करने के लिए पहले उस क्षेत्र को अधिसूचित किया जाना जरूरी होता था। परन्तु मौजूदा कानून एक ही बार में स्वतः पूरे देश में लागू हो जाएगा और पूरे पांच साल तक लागू रहेगा। इसलिए संसद के प्रति जवाबदेही और नियमित वैधानिक समीक्षा की सीमित संभावनाएं भी नहीं बचेंगी।

अनंत क्षेत्रः आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधियाँ क्या हैं?

विधेयक में आतंकवादी गतिविधियां उन्हें माना गया है, जिनकी मंशा हो –

➔ लोगों या किसी वर्ग के लोगों के मन में आतंक पैदा करने की

➔ भारत की एकता, अखंडता, सुरक्षा या प्रभुसत्ता को खतरा पहुंचाने की (धारा ३(१))

ऐसी सर्वव्यापी परिभाषाओं के कारण किसी भी तरह के विरोध को – चाहे वह निजी हो या सार्वजनिक, हिंसक या अहिंसक – 'चाहे कुछ गतिविधि करके या बोल कर या किसी भी अन्य माध्यम से' – इस विधेयक की चपेट में आ जाएगा। ऐसी गतिविधि करने वालों को शरण देना (धारा ३(४)), सहायता देना या उकसाना (धारा ३(३)), सेवाओं या आपूर्ति में विघ्न डालना, और सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना (धारा ३(१ए)) भी शामिल है। "आतंकवादी संगठन या गैंग" की सदस्यता भी अपराध है (धारा ३(५))। और ऐसी संपत्ति रखना जो लगे कि आतंकवादी गतिविधि या आतंकवादियों द्वारा संग्रहित पूंजी से हासिल की गई है, भी अपराध है (धारा ३(६))। बिना कोर्ट के निर्देश लिए ऐसी सम्पत्ति को, पुलिस सुपरिटेंडेंट की अनुमति से, जांच अधिकारी, जब्त कर सकता है या उस पर कब्जा कर सकता है। सबसे खतरनाक प्रावधान है कि कोई जानकारी "जो लगे कि किसी आतंकवादी गतिविधि को रोकने या किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी में मदद दे" पुलिस तक पहुंचाने में असफल होना भी इस कानून के तहत अपराध होगा (धारा ३(८))। इस तरह अब इस कानून के चलते सभी नागरिकों पर पुलिस का भेदिया बन जाने का बोझ आ पड़ेगा। स्वतंत्र खोजी पत्रकारिता पर इस प्रावधान का काफी स्पष्ट बुरा असर पड़ेगा।

इस प्रस्ताव में ठेकों और समझौतों की गोपनियता के प्रावधान के तहत भी छूट नहीं दी गई है (धारा १४)।

संजय दत्त पर लगाए जाने के कारण काफी प्रसिद्ध हुई टाडा की अधिसूचित इलाकों में हथियार ले जाने सम्बंधित धारा का सबसे ज्यादा दुरुपयोग हुआ था। क्रि.ला.अ बिल के प्रस्ताव में इसे हटा दिया गया था, पर लॉ कमीशन के नए बिल में इसे फिर से शामिल कर लिया गया है (धारा ४)। ज़ाहिर है लॉ कमीशन ने इसके दुरुपयोग के इतिहास में जाने की ज़रूरत नहीं समझी। लॉ कमीशन जिसे 'बेहतर टाडा' का नाम दे रहा है उस प्रस्तावित बिल में एक ध्यान देने की बात है – इसमें आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधियों को अलग श्रेणियों की जगह एक में डाल दिया गया है। कहा गया है कि इससे आतंकवादी गतिविधि की परिभाषा और स्पष्ट हो जाएगी और 'जायज़' राजनैतिक विरोध के खिलाफ इस कानून के इस्तेमाल पर रोक लगेगी। पर असल में इससे 'राजनैतिक विद्रोह' पर केन्द्रीकरण और बढ़ा है और इससे अपराध को राजनैतिक और वैचारिक प्रेरणा के आधार पर परिभाषित करके इसके लिए और तौर तरीके और अधिक सज़ा सुनिश्चित की जा सकेगी। और किस व्यक्ति या किस अपराध के लिए ये असामान्य तरीके इस्तमाल होने हैं यह तय करने का अधिकार पुलिस और सत्तारूढ़ राजनैतिक दल को होगा।

इस तरह की व्यापक और सर्वव्यापी परिभाषा के कारण ही ऐसे क्रूर कानूनों का प्रयोग इतने मनमाने तरीके से हो सकता है। इसका नतीजा सिर्फ 'दुरुपयोग की कुछ गिनी–चुनी घटनाएं' नहीं होती क्योंकि दुरुपयोग कानून के ढांचे में ही निहित होता है, उस जगह से जहां वह अपराधों को परिभाषित करता है।

विस्तृत परिभाषाओं के अलावा विधेयक के तहत अलग मकसद के लिए किए गए समान अपराध के लिए सजा भी अधिक सख्त है। ऐसे गुनाह जिनसे किसी की मौत न हुई हो, की कम से कम सजा ५ साल की जेल और अधिकतम सजा आजीवन कारावास है। इसका अर्थ है – भाषण देने, रैली में बोलने या किसी विरोध की कार्यवाही में हिस्सा लेने से जिससे कहा जाए कि सहयोग या सहभागिता दिखती है, व्यक्ति ५ साल के लिए जेल में बंद हो सकता है। यानि किसी राजनैतिक कार्यवाही के चलते किसी वाहन को नुकसान पहुंचाने की सज़ा, एक गुंडे बदमाश द्वारा आगजनी पर मिलने वाली सज़ा से ज्यादा होगी। या ऐसे अपराध जिसमें किसी की मौत हो गई हो – सजा आजीवन कारावास या मौत है। और यह सज़ा भी उन तौर तरीकों से हो सकती है जिनमें सभी सुरक्षा उपाय गायब हैं।

अजीबोगरीब कार्य प्रणाली

"अपराध की नृशंस प्रवृत्ति" में अलग आपराधिक प्रणाली इस्तेमाल होगी। अपराध प्रक्रिया संहिता (सी.आर.पी.सी.) और उसमें शामिल अभियुक्तों के लिए रक्षा उपायों को, इस आधार पर हटा दिया गया है कि ये मामूली अपराधी नहीं हैं और इसलिए अधिक गंभीर तहकीकात की जरूरत है। जो कहा नहीं गया है वह यह है कि अभियुक्त आम कानूनों में दिए गए सुरक्षा उपायों के लायक नहीं है।

पुलिस रिमांड और जमानतः इस कानून के तहत अभियुक्त को बिना आरोप लगाए ३० दिनों तक पुलिस रिमांड पर और ६ महीने तक जेल में रखा जा सकता है। जमानत के अधिकार पर भी काफी प्रतिबंध लगाए गए हैं {धारा ३०(६)} कोर्ट तभी जमानत पर छोड़ सकता है जब उसके पास यह मानने का तर्कसंगत आधार हो कि अभियुक्त दोषी नहीं है। अग्रिम जमानत की इस कानून में इजाजत नहीं है (धारा ३०(५))। अभियुक्त अगर विदेशी हो तो यह प्रावधान और भी कड़े हैं (धारा ३०(६))। इन प्रावधानों से तहकीकात में मदद मिलेगी और अभियुक्त द्वारा तहकीकात में बाधा डालने की कोशिशों को रोका जा सकेगा, ऐसी इस विधेयक की मंशा बताई गई है।

गुनाह कबूलनाः पुलिस अफसरों के सामने कबूले गए गुनाह, प्रमाण के रूप में मान्य होंगे {धारा २७}। पुलिस द्वारा हिरासत में ज्यादतियों और यातना देकर गुनाह कबूलवाने के लिए यह खुला निमंत्रण है। विधेयक में शामिल सुरक्षा उपाय कि ऐसे बयानों को तभी प्रमाण माना जाएगा जब वह बड़े पुलिस अधिकारियों के सामने लिए गए हों – कोई सुरक्षा नहीं देता (देखें "बारह सौल किस लिए")।

'प्रतिकूल निष्कर्ष' की शासन पद्धतिः प्रि.आ.टे. एक ऐसी प्रणाली को मान्यता देता है जहां अभियुक्त को दोषी माना जाएगा जब तक वह निर्दोष साबित न हो। स्थापित कानून के यह प्रत्यक्ष विरोध में है, जहां हर व्यक्ति को गुनाह साबित होने तक बेकसूर माना जाता है। अगर किसी के पास से भी हथियार या विस्फोटक पदार्थ मिले जो 'लगता हो' कि इस कानून के तहत अपराध करने के लिए इस्तेमाल हुए थे, या अगर अपराध स्थल के पास किसी के भी उंगलियों के निशान मिलें या लगे कि एक व्यक्ति

ने ऐसे किसी अपराध को किए जाने में पैसे या किसी अन्य तरीके से मदद की है तो न्यायालय को निर्देश है कि वो अभियुक्त के गुनाह के संबंध में 'प्रतिकूल निष्कर्ष' निकाले, जब तक कि इसका उल्टा साबित न हो जाए (धारा ३४)। नए कानून के तहत (धारा २२) अगर कोई व्यक्ति खून का नमूना, लिखाई का नमूना या उंगलियों के निशान न देना चाहे तो न्यायालय उसे गुनहगार मानेगा। कई एक प्रतिकूल निष्कर्ष अंततः अत्यंत निर्दयता से अभियुक्त को गुनहगार साबित कर ही देंगे। अभियोग पक्ष को किसी तरह के मानकों द्वारा अपना निर्णय साबित नहीं करना होगा। मृत्यु दंड तक की सजा वाले अपराधों में भी पुलिस को अपना निर्णय साबित करने के लिए बुनियादी मानक तक लगाने की जरूरत नहीं है कि दोष "किसी तर्कसंगत शक के बिना सिद्ध" है।

गवाहों की सुरक्षा : गवाहों को धमकियों और डराए जाने से बचाने के लिए जिरह के समय गवाहों की पहचान गुप्त रखी जा सकती है (धारा २५(२))। इसी कारण से अदालत की चाह पर मुकदमा (बंद अदालत में) भी चल सकता है (धारा २५(१))। इससे जिरह की सम्भावना पर गम्भीर असर पड़ता है और अभियोजन की वैधता खत्म होने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है। ऐसे सभी प्रावधान जो अभियुक्त के अधिकारों पर चोट पहुँचाते हैं और जो प्राकृतिक न्याय के बुनियादी सिद्धान्तों का हनन करते हैं को नृशंस अपराधों से ज्यादा बेहतर तरीके से निपटने को बिनह पर लाया जा रहा है। पर हर एक ऐसा कड़ा प्रावधान पुलिस और अभियोग पक्ष को इन 'असाधारण' अपराधों के प्रति ज्यादा नहीं बल्कि कम गंभीर बनाता है।

पुलिस आरोप पत्र जमा नहीं करेगी क्योंकि उन्हें ६ महीनें तक ऐसा करने की जरूरत नहीं है, सबूत जुटाने का काम बखूबी करना जरूरी नहीं है क्योंकि अभियुक्त का अपराध स्वीकरण प्रमाण माना जा सकता है। तहकीकात में लापरवाही बरती जा सकती है क्योंकि मुकदमा सार्वजनिक और खुला नहीं है। यहां तक कि गवाहों को ढूढ़ने की ज़रूरत नहीं रहेगी क्योंकि 'पहचान गुप्त रखने के प्रावधान' के चलते, पुलिस को अपने पके पकाए खरीदे हुए गवाहों का इस्तेमाल करके और केस गढ़ने की छूट होगी।

हाल में ऐसे अनेकों मौके आए हैं जब कई मजिस्ट्रेटों ने, जांच अधिकारियों को ठीक से जांच न करने के लिए डांटा है। टाडा और प्रि.आ.टे. जैसे कानून न्यायिक व्यवस्था को और बर्बाद करने में इंधन का काम करते हैं। हाल ही में राज्यों की पुलिस, सी.आई.डी., सी.बी.आई. के प्रमुखों और विधि वैज्ञानिकों के दिल्ली में हुए सम्मेलन में, सिफारिश की गई कि भारतीय प्रमाण कानून और सी.आर.पी.सी. में संशोधन किया जाए ताकि पुलिस अफसरों को दिए गए बयान – प्रमाणों के रूप में दाखिल किए जा सकें। इससे साफ जाहिर है कि विशिष्ठ कानूनों द्वारा जो सड़ान शुरू होती है वह धीरे–धीरे पूरी न्याय प्रणाली में फैल सकती है।

इंसाफ से वंचित करना

यह विधेयक न केवल सी.आर.पी.सी. को उलट पुलट कर देना चाहता है परन्तु एक नई श्रेणीबद्ध व्यवस्था को जन्म देता है जिसमें उच्च न्यायालय को उसकी संविधानिक भूमिका से वंचित कर दिया गया है। इसके पीछे तर्क यह दिया गया है कि इससे मामलों का निपटारा जल्दी हो सकेगा। और इसी बहाने से शायद कार्यपालिका को व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं और न्यायपालिका से कई सारे अधिकार छीन लिए गए हैं।

कार्यपालिका को बेहद अधिकार: कार्यपालिका की इस कानून के तहत नियम बनाने, सजा तय करने, कार्यविधि तय करने, संपत्ति जब्त करने या उस पर कब्जा करने के अधिकार हैं। यहाँ तक कि उसके पास सिविल कोर्ट के अधिकार तक भी हैं। (धारा १३)। इसका मतलब है कि कार्यपालिका सिर्फ आदेशों और नियमों द्वारा उन मामलों में भी मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगा सकती है जिनका इस कानून में स्पष्ट जिक्र है (धारा ४१)। टाडा से विपरीत प्रि.आ.टे. के तहत इन आदेशों और नियमों को संसद के समक्ष रखा जाना भी जरूरी नहीं है जिससे इन आदेशों व नियमों को बनाने के लिए कोई जवाबदेही नहीं रह जाती। कार्यपालिका और न्यायपालिका को एक दूसरे से स्वतंत्र रखने के संविधान के बुनियादी सिद्धांत को भी तिलांजली दे दी गई है, और एक निष्पक्ष और जनवादी न्याय प्रणाली के सभी नियंत्रणों और संतुलनों को भी।

मुकदमों की प्रक्रिया: इस विधेयक में केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा विशेष न्यायालय स्थापित करने का प्रावधान है, (धारा १८)। इनकी अध्यक्षता सेवानिवृत्त सेशन जज भी कर सकते हैं। इन न्यायालयों का स्थान और इनके कार्यक्षेत्र की सीमा आदि के निर्धारण में केन्द्र सरकार को खुली छूट दी गई है। अगर टाडा के मामलों के लिए बनाए गए डेसिगनेटिड कोर्ट का अनुभव कोई संकेत है तो इन विशेष न्यायालयों में भी मामलों की भरमार होगी और मामले सालों–साल रेंगते रहेंगे। ऐसा भी हो सकता

राजीव गांधी हत्याकांड: कुछ खरे तथ्य

सी.बी.आई. ने २७ अभियुक्तों को गिरफ्तार किया और उन पर टाडा के सेक्शन भी लगाए।
उन्हें न्यायालय में पेश किए जाने से पहले ६-१६ दिनों तक गैरकानूनी ढंग से हिरासत में रखा गया।
न्यायालय ने ६० दिनों का पुलिस रिमांड दिया। जिसके परिणाम स्वरूप १७ लोगों ने गुनाह कबूले।
एक अभियुक्त हिरासत में मारा गया।
गुनाह कबूलने के सभी बयान बाद में वापिस लिए गए। पुलिस यातना की शिकायतें की गईं।
परन्तु गुनाह कबूलने के यही बयान, सजा का आधार बने। बाकी बचे सब २६ अभियुक्तों को फांसी की सजा हुई।
उच्च न्यायालय में अपील की इजाजत नहीं थी, क्योंकि अभियुक्तों पर टाडा के तहत आरोप लगे थे।
सर्वोच्च न्यायालय ने सभी २६ अभियुक्तों को टाडा के आरोपों से बरी कर दिया। १९ लोगों को हत्या के आरोप में बेकसूर पाया गया। ४ को मृत्युदंड सुनाया गया। १ की मृत्युदण्ड की सज़ा को बाद में आजीवन कारावास में बदल दिया गया।
इस सजा का आधार गुनाह कबूलने का वही बयान है जो पुलिस ने १७ अभियुक्तों को प्रताड़ित करके हासिल किया था। पुलिस के सामने गुनाह कबूला जाना सिर्फ टाडा में ही प्रमाण के रूप में दाखिल हो सकता है, साधारण कानून में नहीं।
सी.बी.आई. जांच के जांच अधिकारी डी.आर.कार्तिकेयन आज राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के डायेरेक्टर जनरल हैं।
वही राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अब राजीव गांधी हत्या कांड की सी.बी.आई. की जांच के दौरान पुलिस द्वारा यातना के आरोप की अभियुक्तों की याचिका को सुनेगा।

है कि न्यायालय अपने बैठने की जगह (धारा १६) वहां तय करे जहां अभियुक्त बंदी हैं (उदाहरण के लिए राजीव गांधी की हत्या के मामले में पुलिस रिमांड न्यायिक हिरासत और अभियोजन सभी एक ही जगह पर हुए)। इस तरह से न्याय होने की संभावना और भी कम हो जाती है।

मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए समरी ट्रायल बिना अभियुक्त को सुने बिना गवाहों की जांच किए बिना औपचारिक आरोप बनाने का प्रावधान रखा गया है (धारा २४(२))। जिसके तहत दो साल तक की सजा हो सकती है। सी.आर.पी.सी. में समरी ट्रायल के तहत अधिकतम सज़ा ३ महीनों की और बुरा तो यह है कि मुकदमा चलाया जा सकता है – अभियुक्त और उसके वकील की गैर हाज़री में (धारा २४(५))।

इसलिए अंतहीन समय तक बंदी रहने, पुलिस द्वारा यातना देकर गुनाह कबूलवाए जाने के बाद है विशेष न्यायालय, गुप्त गवाह और यहां तक कि ऐसा मुकदमा जहां अभियुक्त पक्ष को सुना ही न जाए। प्रि.आ.टे. विधेयक की यह मुकदमें की प्रक्रिया, प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष मुकदमे के हर सिद्धांत के खिलाफ है।

अपील के सीमित अधिकार: इस प्रस्ताव में उच्च न्यायालय में अपील के अधिकार का प्रावधान जोड़ा गया है। यह निश्चित रूप से स्वागत के योग्य है क्योंकि टाडा और प्रस्ताव सी.एल.ए. बिल में अपील की यह संभावना भी नहीं थी। परन्तु अपील के लिए सिर्फ ३० दिन का समय दिया गया है जबकि साधारण कानूनों में यह समय ६० दिन का होता है। इस तरह अपील के अधिकार को सीमित कर दिया गया है। मृत्युदण्ड जैसी अपरिवर्तनीय सज़ा के लिए भी केवल ३० दिन का समय दिया गया है।

न्यायिक पुनर्विचार और अपील की संभावना को सीमित करके न्यायिक भूलसुधार का मौका भी कम हो जाएगा। वह भी जब सज़ा के अधिक सख्त प्रावधान हैं (धारा ५)। कानून के समक्ष एक जैसे बर्ताव के अधिकार को भी दरकिनार कर दिया गया है।

और न्याय का क्या? भूल जाइए। ये कानून न्याय देने के लिए नहीं है। यहां तक कि कानून के दो लिखित उद्देश्य अधिक प्रभावी तहकीकात और विलम्ब अभियोग – जिनकी सेवा में कई क्रूर प्रावधान बनाए गए हैं, वे खुद ही इन उद्देश्यों का गला घोंट देते हैं।

किसकी रक्षा किसका सरः लुप्त सुरक्षा उपाय

विधेयक के शुरूआती प्रस्ताव में जो ठोस सुरक्षा उपाय सुझाए गए थे उनमें से उच्च न्यायालय में अपील के अधिकार के अलावा सभी को केन्द्र सरकार द्वारा हटा दिया गया है। ये सुरक्षा उपाय, जैसा कि पहले बताया गया है, टाडा के निरंकुश इस्तेमाल के खिलाफ व्यापक सार्वजनिक विरोध की बदौलत शामिल हुए थे।

इन सुरक्षा उपायों के निकाले जाने के बाद, जो कुछ थोड़ा बहुत बचता है वो निम्नलिखित हैः

नए विधेयक में नौकरशाहों द्वारा पुनर्विचार के लिए समितियों के गठन का प्रावधान है जो हर तीन महीनों में केन्द्र और राज्य स्तर पर अपना कार्य करेंगी (धारा ३६)। परन्तु जांच और पुनर्विचार का यह अधिकार केवल कार्यपालिका को दिया गया है।

इस कानून के तहत पुलिस द्वारा भ्रष्ट और दुर्भावनापूर्ण क्रियाकलापों के लिए एक साल तक की सजा का प्रावधान है (धारा ३७)। परन्तु प्रि.आ.टे. का यह प्रावधान आई.पी.सी. (धारा २११) में मौजूद प्रावधान को हल्का कर देता है जहां ऐसे रवैये के लिए साधारणतः २ साल की सज़ा है और मृत्यु दण्ड और आजीवन कारावास की सज़ा वाले मामलों में सात साल तक की सज़ा है। स्वाभाविक है कि ऐसा एक भी मामला ढूंढ पाना मुश्किल है जिस में किसी पुलिस अधिकारी पर इस धारा के तहत कार्यवाही हुई हो। प्रस्ताव में सशस्त्र बलों (आर्मड फोर्सेज़) को ऐसी कार्यवाही से छूट दी गई है।

सुरक्षा उपायों के अन्य प्रावधान हैं कि इस कानून के तहत गुनाह की जानकारी दस दिन के भीतर डी.जी.पी. की स्वीकृति और तीस दिन के अंदर पुनर्विचार समिति की स्वीकृति से ही रिकार्ड की जाए (धारा ३१(१,२,३)) और कोर्ट ऐसे किसी गुनाह की सुनवाई सिर्फ राज्य या केन्द्र सरकार की अनुमति से शुरू करे (धारा ३१(५))। टाडा के तहत डी.एस.पी. की अनुमति और आइ.जी.पी. की सहमति की जरूरत थी। इस प्रावधान को रचने में एक अप्रमाणित पूर्व धारणा है कि वरिष्ट पुलिस अधिकारियों को तहकीकात सौंपने से इस कानून के दुरुपयोग से बचाव के कुछ तरीके उपलब्ध करा दिए गए हैं (धारा ३२)।

अभियुक्तों के कुछ अधिकार, जैसे कानूनी मदद का अधिकार, गिरफ्तारी के बाद संबंधियों को तुरंत खबर भेजे जाने का अधिकार, और हिरासत का ज्ञापन पत्र तैयार करने की पुलिस की ड्यूटी को लिखित में स्पष्ट किया गया है (धारा ३३)। हालांकि इन सुरक्षा उपायों को स्वागत है परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इन सुरक्षा उपायों को सर्वोच्च न्यायलय ने हर अभियुक्त के मूलभूत अधिकार माना है। इनका दिन रात खुलेआम उल्लंघन किया जा रहा है और इन उल्लंघनों को रोकने की कोई भी प्रभावी व्यवस्था या सज़ा नहीं है। इनकी अनुपस्थिति में ये प्रावधान सिर्फ दिखावटी हैं।

निष्कर्ष

इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि आज देश की सामाजिक और राजनीतिक जिंदगी में अत्याधिक हिंसा व्यापत है। सामाजिक तनावों का परिचालन और अधिक संविधान के दायरे के बाहर होता जा रहा है। इसे सम्बोधित करने की व्यग्रता बढ़ रही है क्योंकि यह बढ़ती हुई हिंसा, प्रत्यक्ष अनुभव से तथा रोज़ाना की अखबारों की सुर्खियों और भयभीत कर देने वाली छवियों द्वारा, हमारी रोजमर्रा की ज़िन्दगी में प्रवेश कर रही है। हाल में एक 'दुश्मन देश' की 'अस्थिरता फैलाने वाली ताकत' की छवि ने इस डर को बढ़ाया है। इस तरह के असाधारण संदर्भ में एक और असाधारण कानून की ज़रूरत है – ऐसा मनवाने की कोशिश की जा रही है। आई.सी. ८१४ विमान के अपहरण के बाद तथाकथित 'नरम राज्य' की कड़ी आलोचना हुई। असल में भारतीय राज्य इसलिए नरम राज्य नहीं है क्योंकि उसने अपहरणकर्ताओं की मांग मान ली, बल्कि नरम राज्य वह होता है जो अपने ही कानून लागू न कर सके, अपने ही संविधान के सिद्धान्तों पर न चल सके। उस तरह से राज्य और उसकी न्याय व्यवस्था का अप्रभावी होना उसके नरम होने का पैमाना है। प्रि.आ.टे. जैसे कानून इस तरह की नरमी को वैध बनाते हैं। ये कानून ऐसा करते हैं – कानून और संविधान दोनों का बहिष्कार करके; न्यायिक प्रणाली को बर्बाद करके; और उस जनवादी ढांचे पर अपूरणीय हिंसा को वैधता प्रदान करके जो समाज को साथ रखता है। नरम राज्य अत्यंत दमनकारी भी हो सकता है जैसा कि इसके असंख्य भुक्त–भोगी बता सकते हैं। और समस्याएं तो अनेकों तरह की हैं – अलगाववादी आंदोलन से लेकर क्षेत्रीय आकांक्षाएं, सामाजिक दमन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष से लेकर सांप्रदायिक हिंसा तक। ये सब अपनी विचारधारा, राजनीति, सोच और यहां तक कि हिंसा के स्तर में एक दूसरे से बहुत अलग हैं। इन सब की जड़ें विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भों और क्षेत्रीय

आकांक्षाओं में हैं, पर इन सब को एक ही श्रेणी में डाल दिया गया है – वह है आतंकवाद। जिससे टाडा या प्रि.आ.टे. जैसे कानूनों से निपटा जा सकता है।

इस कानून में अपराध की परिभाषा इतनी बृहत है कि इससे साधारण कानून व साधारण आपराधिक न्याय प्रणाली के सभी अपराध इसमें भी शामिल हो जाते हैं। अपराध के इरादे या मंशा को भी परिभाषा में डालकर भी ऐसा कर लिया गया है। १९९५ में राज्य सभा में सी.एल.ए. बिल के ऊपर बहस के दौरान, जैसा कि भाजपा सांसद सुषमा स्वराज का कहना था "केवल कुछ करने के लिए ही सजा नहीं मिलेगी, परन्तु कुछ करने के पीछे की मंशा के लिए भी मिलेगी। जो लोग देश की एकता और अखंडता पर सवाल उठाते हैं उन पर दया नहीं की जानी चाहिए – ऐसे लोगों के साथ नरमी का सवाल ही नहीं उठता।" और यही इस असाधारण कानून के पीछे का दार्शनिक तर्क है।

क्योंकि मौजूदा कानून ऐसे सभी अपराधों – हत्या, आगजनी, बम विस्फोटों, राजद्रोह और यहां तक कि अपहरण तक से तो निपट सकते हैं, पर ये साधारण कानून जो नहीं कर पाते वो है ऐसे अपराधों की मंशा के लिए सज़ा देना। साधारण कानून में मंशा का महत्व कानूनी तौर पर एक मामले में अपराध सिद्ध करने या एक अभियुक्त की सजा तय करने के लिए होता है। परन्तु टाडा और इस प्रस्तावित कानून में खास यह है कि साधारण कानूनों के तहत दंडनीय अपराधों में मंशा जोड़ने भर से गिरफ्तारी, कैद, अभियोग और अपील सभी के लिए अलग न्यायिक मशीनरी और एक अलग आपराधिक कार्यप्रणाली इस्तेमाल की जाएगी, और अंत में सज़ा भी अधिक होगी। और ऐसी मंशा को साबित किया जाना भी जरूरी नहीं है।

इसलिए, मंशा की परिभाषा को सीमित करने से भी यह कानून कम अप्रजातांत्रिक नहीं हो सकेगा।

और इसलिए ये कानून इतना खतरनाक है।

पी.यू.डी.आर. मांग करता है कि इस प्रस्तावित आतंकवाद विरोधी कानून को पूरी तरह से बिना किसी शर्त वापिस लिया जाए।

उन्होंने संसद में क्या कहा

क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट बिल, १६६५ पर
राज्य सभा बहस, २२ मई १६६५

जयपाल रेड्डी:

"पिछले आठ सालों में आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधियों में बढ़ोतरी हुई है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आतंकवाद के बढ़ने में क्या टाडा की कोई भूमिका है क्योंकि जब हमने यह कानून पारित किया था, उस समय आतंकवादी गतिविधियों की बाढ़ नहीं आई हुई थी। अगर टाडा ने इन गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं भी दिया है तो भी यह इन गतिविधियों को रोकने में असफल तो ज़रूर हुआ है।"

सुषमा स्वराज:

"हम मानते हैं कि टाडा का न केवल दुरुपयोग हुआ है बल्कि इसका दुरुपयोग बहुत गंभीर रूप से हुआ है. . . . दुरुपयोग की बुनियादी जड़ यह है (धारा ३)। क्योंकि यहीं आप आतंकवादी गतिविधि को परिभाषित करते हैं। और इस परिभाषा के कारण ही राजनैतिक विरोधियों को टाडा के तहत गिरफ्तार किया जा सकता है. . . . टाडा का इस्तेमाल किसानों पर किया जा सकता है. . . . निर्दोष लोगों को टाडा के तहत पकड़ कर सालों तक बंद रखा जा सकता है। आपकी परिभाषा इतनी व्यापक है कि एक व्यक्ति–एक साधारण अपराधी जिसे भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) के तहत आरोपित किया जा सकता था, को भी इस कानून के तहत पकड़ा जा सकता है। इससे इस एक्ट का मकसद और आशय दोनों ही खत्म हो जाते हैं।"

जगन्नाथ मिश्रा:

"हम यह भी मानते हैं कि इस कानून का इस्तेमाल पुलिस ने स्थानीय विभागों के दबाव, भ्रष्ट कारणों और राजनीतिक फायदों के लिए किया तथा उसके तहत निर्दोष लोगों को गिरफ्तार किया गया। लोगों को पुलिस की इन ज्यादातियों से बचाना और सुरक्षा प्रदान कराना जरूरी है।"

राम .जेठमलानी:

"जब से यह कानून १६८५ में पारित हुआ है, आतंकवाद में कमी नहीं आई है। आतंकवाद के आकार और इसकी कार्यवाही के प्रसार दोनों विस्तारित हुए हैं. . . .। इसका मतलब है कि आपके इसे खत्म करने की कोशिश के तरीके में ही कुछ गड़बड़ है। इसका अर्थ है कि आप जिन अपराधों से निपटने की कोशिश कर रहे हैं उनसे इन तरीकों से नहीं निपटा जा सकता। मेरी यह कामना है कि कुछ शिक्षित लोग होते जो गृहमंत्री को सिखा सकते – कुछ लोग जिन्हें अपराध विज्ञान की गहरी समझ हो, जिन्हें वैद्यानिक सिद्धान्तों और दण्डविधान के सिद्धांतों की समझ हो। तब उन्हें यह समझ में आता कि आतंकवाद वह विलक्षण और असामान्य किस्म का अपराध है, जिसका इलाज कानून, तथा और अधिक सख्त कानून से नहीं हो सकता. . . . **आपने एक ऐसा कानून बना दिया है जिससे किसी भी सभ्य नागरिक को शर्म आएगी।**

प्रकाशक: सचिव, पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक राइट्स, दिल्ली (पी.यू.डी.आर.)

प्रतियों के लिए: डा. सुदेश वैद, डी–२, स्टाफ क्वाटर्स, आई.पी. कालेज, शामनाथ मार्ग, दिल्ली

मुद्रक:

सहयोग राशि: ३ रु.